ज्ञानविविधा
कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी-समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका

ISSN : 3048-4537(Online)
3049-2327(Print)
IIFS Impact Factor-2.25
Vol.-2; Issue-3 (July-Sept.) 2025
Page No.- 432-437
DOI-10.71037/gyanvividha.v2i3.51
©2025 Gyanvividha
https://journal.gyanvividha.com

Hanuman
Gujarat University, Ahmadabad.

Corresponding Author :

Hanuman
Gujarat University, Ahmadabad.

आंचलिक हिन्दी साहित्य में लोक-संस्कृति और सामाजिक परिवर्तन

सारांश : यह शोधपत्र आंचलिक हिन्दी साहित्य के प्रमुख उपन्यासों फणीश्वरनाथ रेणु के मैला आँचल और परती परिकथा, नागार्जुन के बलचनमा, रांगेय राघव के कब तक पुकारूँ, राही मासूम रज़ा के आधा गाँव, विवेकी राय के सोना माटी तथा श्रीलाल शुक्ल के राग दरबारी के आधार पर यह प्रतिपादित करता है कि लोक-संस्कृति आंचलिक साहित्य में केवल रंग-रोगन या लोक-चित्रमाला नहीं, बल्कि सामाजिक यथार्थ की जीवित संवहिनी है। इन कृतियों में अंचल किसी भूगोल का स्थिर मानचित्र नहीं, बल्कि जाति, वर्ग, धर्म, श्रम, स्मृति, बोली, मिथक, रीति, उत्सव, नैतिकता और सत्ता-संबंधों से निर्मित एक जटिल सांस्कृतिक परिसर है। यही कारण है कि यहाँ लोक-संस्कृति और सामाजिक परिवर्तन परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि द्वंद्वात्मक सहचर के रूप में उपस्थित होते हैं। एक ओर लोक-जीवन का सांगीतिक, उत्सवी, सामुदायिक और प्रकृतिनिष्ठ पक्ष दिखाई देता है; दूसरी ओर जमींदारी अवशेष, विकास-राजनीति, साम्प्रदायिक तनाव, स्त्री-देह का वस्तुकरण, शिक्षा की असमानता, ग्राम्य राजनीति का क्षरण और नैतिक विघटन भी सामने आते हैं। इस अध्ययन का निष्कर्ष है कि आंचलिक हिन्दी साहित्य भारत के ग्रामीण समाज को 'पिछड़ेपन' की जड़ छवि में नहीं बाँधता; वह उसके भीतर चल रही परिवर्तन-प्रक्रियाओं, प्रतिरोधों और नई चेतनाओं को उजागर करता है। इस अर्थ में आंचलिक साहित्य स्थानीय होकर भी राष्ट्रीय अनुभव का संवेदनशील रूपक बन जाता है।

मुख्य शब्द : आंचलिकता, लोक-संस्कृति, सामाजिक परिवर्तन, ग्राम्य जीवन, हिन्दी उपन्यास, लोकभाषा, ग्रामीण चेतना, स्वातंत्र्योत्तर साहित्य।

1. परिचय : स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य में आंचलिकता का उभार केवल एक साहित्यिक प्रवृत्ति नहीं था; वह भारतीय समाज की सांस्कृतिक पुनर्खोज का भी क्षण था। मैला आँचल की भूमिका में रेणु का कथन "**यह है मैला आँचल, एक आंचलिक उपन्यास**" दरअसल हिन्दी कथा-

साहित्य में एक नयी औपन्यासिक दृष्टि की उद्घोषणा है। यहाँ अंचल का अर्थ किसी छोटे, सीमित, 'स्थानीय' संसार से नहीं, बल्कि ऐसे जीवंत सामाजिक भूगोल से है जिसमें पूरा जीवन-तंत्र बोलता है। बाद की आलोचना ने भी यह रेखांकित किया कि आंचलिकता में "सम्पूर्ण अंचल ही नायकत्व प्राप्त करता है"; इसलिए आंचलिक साहित्य का मूल्यांकन केवल कथानक या किसी एक पात्र से नहीं, बल्कि उसकी सांस्कृतिक संपूर्णता से किया जाना चाहिए (फणीश्वरनाथ रेणु, 2024; ज्ञानचंद गुप्त, 1975)।

लोक-संस्कृति को यदि संग्रहालय की वस्तु मान लिया जाए, तो आंचलिक साहित्य की असली शक्ति समझ में नहीं आती। विद्यानिवास मिश्र का स्पष्ट कथन है। "**लोक व्यतीत नहीं है**"; अर्थात् लोक अतीत का अवशेष नहीं, वर्तमान का संवहमान जीवन है। कृष्णदेव उपाध्याय भी लिखते हैं कि "**लोक साहित्य लोक संस्कृति की एक महत्त्वपूर्ण इकाई है**।" यही कारण है कि आंचलिक रचनाएँ लोकगीत, लोक-विश्वास, लोकभाषा, लोकाचार, कृषि-परंपराएँ, धार्मिक अनुष्ठान, जातीय व्यवहार और ग्राम्य स्मृतियों को केवल 'दृश्य' के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक संरचना के सक्रिय अंग के रूप में प्रस्तुत करती हैं। इसी बिन्दु पर लोक-संस्कृति और सामाजिक परिवर्तन का संबंध निर्णायक हो उठता है, क्योंकि परिवर्तन सबसे पहले इन्हीं संरचनाओं को प्रभावित करता है (विद्यानिवास मिश्र, 2000; कृष्णदेव उपाध्याय, 2009)।

2. सैद्धान्तिक ढाँचा और शोध-विधि : इस शोधपत्र का सैद्धान्तिक आधार साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन, लोक-संस्कृति की भारतीय अवधारणा और आंचलिकता की आलोचनात्मक व्याख्या पर निर्मित है। निर्मला जैन का समाजशास्त्रीय चिंतन साहित्य को सामाजिक संरचनाओं, मूल्य-व्यवस्थाओं और ऐतिहासिक परिस्थितियों से जोड़कर पढ़ने की मांग करता है; वहीं ज्ञानचंद गुप्त आंचलिक उपन्यास को क्षेत्र-विशेष के "सर्वांगीण जीवन" का कलात्मक रूप मानते हैं। इस अध्ययन में तुलनात्मक पाठ-पद्धति, निकट-पाठ, भाषिक-संकेतों का विश्लेषण, लोक-तत्वों की पहचान तथा सामाजिक परिवर्तन के बिम्बों की विवेचना जैसी विधियों का उपयोग किया गया है। चयनित उपन्यासों में विशेष रूप से पाँच संकेतकों पर ध्यान रखा गया है। लोकाचार, शक्ति-संरचना, सामाजिक विषमता, परिवर्तनशील चेतना और भाषा-शिल्प (निर्मला जैन, 2009; ज्ञानचंद गुप्त, 1975)।

पूर्ववर्ती शोध भी इस दिशा में महत्त्वपूर्ण संकेत देते हैं। आंचलिकता के परिप्रेक्ष्य में फणीश्वरनाथ रेणु का कथा-साहित्य तथा फणीश्वर नाथ रेणु के कथा साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन जैसे शोधप्रबंध यह सिद्ध करते हैं कि रेणु का कथासंसार केवल ग्रामीण चित्रावली नहीं, बल्कि बहुस्तरीय सामाजिक अनुभव का दस्तावेज है। फिर भी बहुतेरे अध्ययनों में किसी एक लेखक या एक कृति के भीतर आंचलिकता को समझने का आग्रह अधिक है; लोक-संस्कृति और सामाजिक परिवर्तन के अंतर्संबंधों को एक तुलनात्मक आंचलिक परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास अपेक्षाकृत कम मिलता है। प्रस्तुत शोधपत्र इसी रिक्ति को भरने का प्रयत्न करता है, ताकि आंचलिक साहित्य को 'सजावटी लोक' के बजाय परिवर्तनशील सामाजिक पाठ के रूप में पढ़ा जा सके (मंशा कुमारी, 1998; सुनीता देवी यादव, 1997)।

3. लोक-संस्कृति और सामाजिक परिवर्तन की अंतःक्रिया : रेणु के यहाँ लोक-संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह जीवन के सुख-दुख, उत्सव-विपत्ति, प्रेम-हिंसा और आशा-निराशा के बीच एक साथ चलती है। मैला आँचल में ग्राम्य जीवन की दैन्यपूर्ण परिस्थिति, बीमारी, अज्ञान, जातिगत विभाजन और शोषण के बीच भी लोक-संवेदना थमी नहीं रहती। यही कारण है कि डॉक्टर, किसान, दलित, स्त्री, पुजारी, सपेरे, चरवाहे सभी मिलकर मेरीगंज की सामूहिक आत्मा रचते हैं। इस उपन्यास में लोक-संस्कृति किसी आदर्श ग्राम्य रोमांस का निर्माण नहीं करती; वह अभाव, अंधविश्वास और शोषण के भीतर भी मनुष्यत्व के छोटे-छोटे उजास बचाती है। रेणु का ग्राम-चित्र इसलिए

महत्त्वपूर्ण है कि उसमें राष्ट्रीय राजनीति का ग्राम्य अनुवाद दिखाई देता है मलेरिया सेंटर, पार्टी-आधारित गोलबन्दी, जाति-संघर्ष और जागती जन-चेतना के रूप में (फणीश्वरनाथ रेणु, 2024; श्याम नन्दन, 2020)।

परती परिकथा में लोक-संस्कृति भू-दृश्य, मिथक और सामाजिक संघर्ष के त्रिकोण में प्रकट होती है। उपन्यास का उद्घाटन ही "**धरती नहीं, धरती की लाश**" जैसी भयावह पंक्ति से होता है, जो केवल भौगोलिक उजाड़ का संकेत नहीं, बल्कि सामाजिक बंजरपन का भी रूपक है। परती भूमि के साथ-साथ वहाँ किंवदंतियाँ, लोककथाएँ, भू-स्मृतियाँ, जातीय स्पर्धाएँ और भूमि-अधिकार के संघर्ष मौजूद हैं। कौशल कुमार पटेल ने ठीक लिखा है कि परती परिकथा के केंद्र में भू-राजनीति, जातीय अस्मिता और ग्रामीण चेतना का यथार्थ है। इस उपन्यास में लोक-संस्कृति एक तरफ भूमि से जुड़ी सामुदायिक स्मृति है, तो दूसरी तरफ वही भूमि सामाजिक विषमता और हिंसक अधिकार-संघर्ष का कारण भी बन जाती है। यहाँ परिवर्तन का प्रश्न केवल विकास का प्रश्न नहीं, न्याय और स्वामित्व का प्रश्न है (फणीश्वरनाथ रेणु, 2025; कौशल कुमार पटेल, 2022)।

विवेकी राय के सोना माटी में लोक-संस्कृति अपनी सबसे सोंधी, परंतु सबसे अधिक संकटग्रस्त अवस्था में मिलती है। यहाँ करइल अंचल की माटी, श्रम, खेत, ऋतु, भाषा, गांव का स्मृतिलोप और नई राजनीति की क्षुद्रता एक दूसरे में गुंथे हुए हैं। उपन्यास का एक अत्यंत अर्थवान क्षण है "**पवन के इशारे पर धान की क्यारी सर-सर कर काव्य-पाठ करती है**।" यह पंक्ति बताती है कि लोक का सौन्दर्य प्रकृति, श्रम और संवेदना के त्रिवेणी-संबंध से बनता है। लेकिन यही संसार टूटते ग्राम्य मूल्यों, विघटित राजनीति, बेरोजगारी, स्त्री-शिक्षा की कठिनाइयों और विकास की मृगतृष्णा से भी घिरा है। इसलिए सोना माटी में लोक-संस्कृति न तो निष्कलुष है और न मृत; वह बदलते समय से संघर्षरत है। यही संघर्ष उसे आधुनिक बनाता है, और यही उसकी त्रासदी भी है (विवेकी राय, 1983; मीनाक्षी चौधरी, 2023)।

नागार्जुन का बलचनमा लोक-संस्कृति को निम्नवर्गीय किसान-जीवन की ठोस सामाजिक भूमि पर रखता है। "**चौदह बरस की उम्र में मेरा बाप मर गया**" यह आरंभ किसी व्यक्तिगत स्मृति का नहीं, पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलने वाले वर्गीय शोषण का उद्घाटन है। यहाँ लोकजीवन के भीतर खेत, बाड़ी, पोखर, गृह-रचना, श्रम-व्यवस्था और जातिगत अवमानना एक साथ उपस्थित हैं। लोक-संस्कृति का अनुभव यहाँ उत्सवधर्मी नहीं, श्रमधर्मी है। किसान की भूख, उसकी देह, उसका परिवार, उसकी नियति सब सामंती सत्ता से घिरे हुए हैं। यही कारण है कि बलचनमा में लोक एक संवेदनात्मक समुदाय होने के साथ-साथ शोषण का स्थल भी है। सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा यहाँ विद्रोह, स्वाभिमान और वर्ग-सजगता के रूप में अंकुरित होती दिखाई देती है (नागार्जुन, 2002; गोपाल राय, 2016)।

रांगेय राघव का कब तक पुकारूँ आंचलिक साहित्य को जाति, जनजाति और स्त्री-शरीर की राजनीति तक विस्तृत करता है। सुखराम नट के जीवन के आसपास निर्मित यह उपन्यास तथाकथित सभ्य समाज द्वारा उपेक्षित करनट समुदाय की सामाजिक परतें खोलता है। शहराती आधुनिकता पर व्यंग्य करते हुए सुखराम का कथन "**बाबू! तुम बिलिया और बैंगन के पत्ते का फरक नहीं जानते**" लोकज्ञान की उस अस्मिता को चिह्नित करता है जिसे औपचारिक शिक्षा और शहरीता अक्सर अज्ञान मान लेती है। लेकिन इस लोकज्ञान के भीतर भी सत्ता की असमान संरचनाएँ मौजूद हैं; स्त्री की देह, पुलिस का भय, जीविका की विवशता और समुदाय की हाशियाकृत स्थिति उपन्यास को करुण यथार्थ प्रदान करती है। इस दृष्टि से कब तक पुकारूँ लोक-संस्कृति को रोमानी नहीं बनाता; वह उसके भीतर की दरारें और बाहरी दमन दोनों दिखाता है (रांगेय राघव, 2002; राजेन्द्र प्रसाद खीचड़, 2021)।

राही मासूम रज़ा का आधा गाँव आंचलिकता को साझा संस्कृति, धार्मिक पहचान और विभाजन-जन्य विघटन के त्रासद बिन्दु पर ले आता है। गंगौली केवल मुस्लिम-बहुल गाँव नहीं, बल्कि एक ऐसा सांस्कृतिक परिसर है जहाँ

शिया-सुन्नी-विभाजन, हिन्दू-मुस्लिम आत्मीयता, मजलिसें, मुहर्रम, बोली और स्थानीय स्मृतियाँ मिलकर जीवन-यथार्थ रचती हैं। उपन्यास की केन्द्रीय चिंता यह है कि यदि गंगौली के लोग 'गंगौलीवाले' कम और संप्रदाय अधिक हो जाएँ तो गाँव का क्या होगा। यहीं लोक-संस्कृति साझेपन की नैतिक भूमि बन जाती है और साम्प्रदायिक राजनीति उसके विघटन का साधन। इस उपन्यास में सामाजिक परिवर्तन राष्ट्र-विभाजन के प्रभाव से ग्रामीण चेतना में आए गहरे मानसिक भूचाल के रूप में उपस्थित है; इसलिए इसका अंचल स्थानीय होकर भी भारत का सांकेतिक रूप धारण कर लेता है (राही मासूम रज़ा, 2026; गोपाल राय, 2016)।

यदि मैला आँचल और आधा गाँव ग्राम्य चेतना के द्वंद्व को गंभीर करुणा के साथ प्रस्तुत करते हैं, तो राग दरबारी उसी परिवर्तन-प्रक्रिया की विडंबनाओं को व्यंग्य के माध्यम से पकड़ता है। रंगनाथ का कथन "**गियर तो बिलकुल अपने देश की हुकूमत जैसा है**" विकास, शासन और संस्थागत प्रगति के खोखलेपन पर असाधारण टिप्पणी है। शिवपालगंज में शिक्षा, पंचायत, सहकारिता और राजनीति जैसी आधुनिक संस्थाएँ लोकजीवन को मुक्त नहीं करतीं; वे नए प्रकार की धूर्तता, अवसरवाद और मूल्यहीनता को जन्म देती हैं। यहाँ लोक-संस्कृति का हास्यबोध बचा रहता है, लेकिन सामुदायिक नैतिकता लगातार क्षरित होती जाती है। इसीलिए राग दरबारी आंचलिक साहित्य का ऐसा चरण है जहाँ सामाजिक परिवर्तन को उत्सव नहीं, विडंबना और संस्थागत विफलता के रूप में जाना जाता है (श्रीलाल शुक्ल, 2020; रामदरश मिश्र, 2016)।

इन सब कृतियों को साथ रखकर देखें तो स्पष्ट होता है कि आंचलिक हिन्दी साहित्य में लोक-संस्कृति कभी भी शुद्ध, समरूप और निर्विवाद नहीं है। उसमें जातिगत ऊँच-नीच, लैंगिक असमानता, सामंती वर्चस्व, श्रम-शोषण, धार्मिक तनाव और राजनीतिक छल पहले से मौजूद रहते हैं। सामाजिक परिवर्तन इन संरचनाओं को कभी तोड़ता है, कभी नया रूप देता है, और कभी उन्हें और अधिक जटिल बना देता है। अतः लोक-संस्कृति यहाँ न तो परिवर्तन की शत्रु है और न स्वतः प्रगतिशील शक्ति; वह संघर्ष का क्षेत्र है, जहाँ पुराना और नया, आत्मीय और क्रूर, सामुदायिक और वर्चस्ववादी सब साथ-साथ काम करते हैं (फणीश्वरनाथ रेणु, 2024; राही मासूम रज़ा, 2026)।

4. भाषा, शिल्प और आंचलिक सौन्दर्य : आंचलिक हिन्दी साहित्य की सबसे बड़ी कलात्मक उपलब्धि उसकी भाषा है। यह भाषा केवल संवाद का माध्यम नहीं, बल्कि संस्कृति की आत्मा है। रेणु, नागार्जुन, विवेकी राय, रज़ा और शुक्ल सभी अपनी-अपनी कृतियों में बोली, उच्चारण, लोक-लय, ध्वनि, कहावत, स्थानीय बिंब और सामुदायिक स्मृति को भाषा के भीतर समाहित करते हैं। इसीलिए आंचलिकता का सौन्दर्य किसी बाहरी विवरण से नहीं, भाषिक अंतःसंगीत से बनता है। विद्यानिवास मिश्र ने लोक के वाचिक पक्ष पर जो ज़ोर दिया है, वह इन कृतियों के भाषिक गठन में प्रत्यक्ष उपस्थित है। यहाँ कथावाचक और पात्र, शास्त्रीय और लोक, व्यंग्य और करुणा, वर्णन और संवाद सब मिलकर ऐसी कथाभाषा गढ़ते हैं जिसमें अंचल स्वयं बोलने लगता है (विद्यानिवास मिश्र, 2000; श्याम नन्दन, 2020)।

शिल्प की दृष्टि से भी आंचलिक उपन्यास एकरेखीय कथा-पद्धति का अनुसरण नहीं करते। मैला आँचल में दृश्य-परिवर्तन, सामूहिक पात्रता और ग्राम्य ध्वनियों का संयोजन है; परती परिकथा मिथकीय, भू-दृश्यात्मक और सामाजिक आख्यान को एक साथ बुनती है; आधा गाँव साझा संस्कृति के विखंडन को बहुस्वरता में रखता है; राग दरबारी व्यंग्यात्मक यथार्थवाद का नए प्रकार का औपन्यासिक मुहावरा विकसित करता है। इस समूचे शिल्प-विन्यास से यह सिद्ध होता है कि आंचलिक साहित्य केवल सामग्री के स्तर पर नहीं, रूप के स्तर पर भी आधुनिक हिन्दी उपन्यास को नए आयाम देता है। इसीलिए आंचलिकता को केवल 'स्थानीय रंग' कह देना उसकी कलात्मक उपलब्धि का लघुकरण होगा (ज्ञानचंद गुप्त, 1975; रामदरश मिश्र, 2016)।

5. परिणाम : अध्ययन से स्पष्ट हुआ कि आंचलिक हिन्दी साहित्य में लोक-संस्कृति के चार महत्त्वपूर्ण रूप उभरते हैं। पहला, लोक-संस्कृति स्मृति, श्रम, प्रकृति, सामुदायिकता और साझा जीवन-मूल्यों की संरचना करती है। दूसरा, वही लोक-संरचना जाति, वर्ग, लैंगिकता और धार्मिक विभेदों से ग्रस्त भी है। तीसरा, सामाजिक परिवर्तन का अर्थ इन रचनाओं में केवल तकनीकी विकास नहीं, बल्कि सत्ता-संबंधों, राजनीतिक चेतना, भूमि-अधिकार, शिक्षा, स्त्री-अवस्था और नैतिक संरचनाओं में बदलाव है। चौथा, आंचलिकता की साहित्यिक शक्ति इस बात में है कि वह स्थानीय अनुभव को राष्ट्रीय यथार्थ के रूपक में बदल देती है। इसलिए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि आंचलिक हिन्दी साहित्य भारतीय समाज के परिवर्तनों का सबसे सूक्ष्म और संवेदनात्मक अभिलेख है, जिसमें लोक-संस्कृति इतिहास की चलती हुई भाषा बन जाती है (गोपाल राय, 2016; निर्मला जैन, 2009)।

6. निष्कर्ष : आंचलिक हिन्दी साहित्य को यदि केवल 'गाँव का साहित्य' कहकर सीमित कर दिया जाए, तो उसकी वैचारिक और कलात्मक ऊँचाई दोनों कम करके आँकी जाएँगी। इन उपन्यासों ने सिद्ध किया है कि लोक-संस्कृति कोई जड़ीभूत अवशेष नहीं, बल्कि समय के साथ बदलती, टूटती, बचती और प्रतिरोध करती जीवन-शक्ति है। फणीश्वरनाथ रेणु से लेकर श्रीलाल शुक्ल तक आंचलिक रचनाकारों ने दिखाया कि भारतीय ग्राम्य समाज में परंपरा और परिवर्तन का संबंध सरलीकृत नहीं है; वह संघर्ष, विडंबना, सामूहिकता, स्मृति, हिंसा, प्रेम और आशा से निर्मित है। इसीलिए आंचलिक साहित्य में लोक-संस्कृति का अध्ययन भारतीय समाज के बहुस्तरीय रूपांतरण को समझने की एक अनिवार्य पद्धति बन जाता है। साहित्यिक दृष्टि से देखें तो इन रचनाओं ने हिन्दी उपन्यास को नई भाषा, नया भूगोल, नया मनुष्य और नया इतिहास-बोध दिया है; सामाजिक दृष्टि से देखें तो इन्होंने राष्ट्र की धड़कन को उसके गाँवों, टोलों, पगडंडियों, इमामबाड़ों, पोखरों, चौपालों और खेतों में सुना है। यही इनकी स्थायी प्रासंगिकता है (फणीश्वरनाथ रेणु, 2024; श्रीलाल शुक्ल, 2020)।

संदर्भ सूची :

1. उपाध्याय, कृष्णदेव. लोक संस्कृति की रूपरेखा. लोकभारती प्रकाशन, 2009.
2. उपाध्याय, कृष्णदेव. लोक साहित्य की भूमिका. लोकभारती प्रकाशन, 2019.
3. कुमारी, मंशा. आंचलिकता के परिप्रेक्ष्य में फणीश्वरनाथ रेणु का कथा-साहित्य. निर्देशक विश्वनाथ प्रसाद, वी. बी. एस. पूर्वांचल विश्वविद्यालय, 1998. पीएच.डी. शोधप्रबंध.
4. खीचड़, राजेन्द्र प्रसाद. "'कब तक पुकारूं' उपन्यास : लोक संघर्ष का सजीव दस्तावेज." अपनी माटी, 30 दिसम्बर 2021.
5. गुप्त, ज्ञानचंद. आंचलिक उपन्यास : संवेदना और शिल्प. अभिनव प्रकाशन, 1975.
6. चौधरी, मीनाक्षी. "सोनामाटी उपन्यास में ग्राम्य जीवन का यथार्थ और सामाजिक चेतना." अपनी माटी, 30 सितम्बर 2023.
7. जैन, निर्मला. साहित्य का समाजशास्त्रीय चिंतन. हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2009.
8. नन्दन, श्याम. "मैला आँचल : कथ्य और शिल्प." महात्मा गांधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, स्नातकोत्तर हिन्दी अध्ययन-सामग्री, 2020.
9. नागार्जुन. बलचनमा. वाणी प्रकाशन, 2002.
10. पटेल, कौशल कुमार. "स्वातंत्र्योत्तर ग्राम्य अंचल में भू-राजनीति और जातीय अस्मिता, विशेष सन्दर्भ : 'परती-परिकथा'." अपनी माटी, 29 जून 2022.

11. मिश्र, रामदरश. हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा. राजकमल प्रकाशन, 2016.
12. मिश्र, विद्यानिवास. लोक और लोक का स्वर. प्रभात प्रकाशन, 2000.
13. राघव, रांगेय. कब तक पुकारूँ. राजपाल एंड सन्स, 2002.
14. राय, गोपाल. हिन्दी उपन्यास का इतिहास. राजकमल प्रकाशन, 2016.
15. राय, विवेकी. सोना माटी. प्रभात प्रकाशन, 1983.
16. रज़ा, राही मासूम. आधा गाँव. 29वाँ सं., राजकमल प्रकाशन, 2026.
17. रेणु, फणीश्वरनाथ. मैला आँचल. 58वाँ सं., राजकमल प्रकाशन, 2024.
18. रेणु, फणीश्वरनाथ. परती परिकथा. 16वाँ सं., राजकमल प्रकाशन, 2025.
19. यादव, सुनीता देवी. फणीश्वर नाथ रेणु के कथा साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन. निर्देशक बालकृष्ण रोहितस्वा शर्मा, गोवा विश्वविद्यालय, 1997. पीएच.डी. शोधप्रबंध.
20. शुक्ल, श्रीलाल. राग दरबारी. राजकमल प्रकाशन, 2020.

•